उदास रोशनी में डूबता सूरज

हिन्दी ADDA

परांग मांदले

उदास रोशनी में डूबता सूरज

बड़ी अजीब शाम थी वह। दिल्ली में आमतौर पर फरवरी महीने में मौसम बड़ा सुहावना रहता है। दो ही महीने होते हैं दिल्ली में, जिनमें उसके मन में यह चाह नहीं उठती है कि दिल्ली से जितनी जल्दी हो सके, भाग जाना चाहिए। केवल दो महीने - नवंबर और फरवरी। जब न हड्डियों को कँपकँपा देने वाली सर्दी होती है और न अपनी चमड़ी से भी छुटकारे की चाह पैदा करने वाली गर्मी। मगर इस साल मौसम ने बड़ी अजीब करवट ली थी। पहले तो फरवरी के दूसरे ही सप्ताह में अचानक शरीर से पसीने की धाराएँ छूटने लगी थीं और अब जब लोगों ने सारे गर्म कपड़े धोकर ट्रंक

में भर दिए तो अचानक मौसम सर्द हो गया। उसे लगा, शायद नेताओं के संग ने दिल्ली के मौसम को भी गिरगिट का सहोदर बना दिया है।

जब ऑफिस के लिए निकला था वह तो सुबह के आठ बजे भी तेज धूप निकली हुई थी। दिन भर काम में ऐसा व्यस्त रहा कि बाहर निकलने की फुर्सत ही नहीं मिली। सो मौसम के बदले हुए मिजाज की कोई जानकारी उसे नहीं हुई। मगर शाम को जब घर जाने के लिए ऑफिस से बाहर आया तो आश्चर्यचकित रह गया वह। आसमान काले बादलों से घिरा हुआ था, वातावरण में दिसंबर की ठंडक थी और शाम को छह बजे भी अच्छा-खासा अँधेरा हो गया था।

उस अजीब शाम ही पूरे बारह साल बाद मिला था वह सूरज भाई से। इस बात से खुद उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था कि सूरज भाई को पहचानने में उसे एक क्षण भी नहीं लगा था। आईएनएस भवन के सामने खड़ा किसी मित्र से बातें कर रहा था वह, जब उसकी दृष्टि अचानक सामने आकर खड़े हुए सूरज भाई पर पड़ी थी और बेसाख्ता उसके मुँह से निकल पड़ा था, 'अरे सूरज भाई! आप यहाँ कैसे?' बाद में उसने इस बात को महसूस किया कि उसके इस तरह तत्काल पहचान लिए जाने से सूरज भाई के चेहरे पर राहत की कोई बारीक-सी रेखा दौड़ गई थी।

वैसे उसे इस बात पर बाद में बड़ा आश्चर्य हुआ था कि उसके जैसा याददाश्त के मामले में बिलकुल कंगाल व्यक्ति किस तरह एक ही पल में न सिर्फ सूरज भाई को पहचान गया था, बल्कि उनका नाम भी तत्काल उसके जेहन में उभर आया था। ऐसा उसके साथ अपवादस्वरूप ही कभी हुआ हो तो हुआ हो। वरना उसकी याददाश्त का यह हाल था कि वह एक दिन पहले मिले हुए व्यक्ति को भी कई बार भूल जाता था और यदि कभी किसी का चेहरा कुछ पहचाना-सा लगता भी तो उस पहचान का संदर्भ खोजने में उसका दिमाग चकरा जाता था। यदि कभी पहचान का संदर्भ याद भी आ जाता तो उस व्यक्ति का नाम तो जैसे याद न आने की भीष्म-प्रतिज्ञा करके बैठ जाता था। मगर पता नहीं क्यों बारह साल बाद देखने के बावजूद वह न केवल एक पल में ही सूरज भाई को पहचान गया था, वरन उन्हें पुकार भी बैठा था।

उम्र का भरपूर असर सूरज भाई के चेहरे पर दिखाई दे रहा था। रंग पहले भी कोई साफ न था, मगर पहले का साँवलापन अब कालिमा में बदल गया था। चेहरा कुछ सूख गया था। आँखों के नीचे झाइयाँ फैल गई थीं। उज्जैन में एक आंदोलन के दौरान पुलिस की लाठियों की मार खाकर शहीद हुए सामने के दो दाँतों की जगह लगाए गए नकली दाँत गायब हो गए थे। बाकी के दाँतों पर काले और पीले रंग का मिश्रण इस

तरह तारी था कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि कभी इन दाँतों ने सफेदी भी देखी होगी। बाल हमेशा की तरह बेतरतीब थे, अंतर इतना था कि अब काले-सफेद बालों की खिचड़ी बन गई थी। सूरज भाई के कुछ नजदीक आते ही उसने इस बात को नोट किया था कि उनके कपड़ों से आने वाली गंध अब भी वैसी ही थी। असहनीय। मानो किसी सीलन भरी कोठरी में सालों से बंद पड़े किसी ट्रंक से कपड़े निकालकर पहन आया हो कोई।

कुछ पल बाद उसने इस बात को महसूस किया कि सूरत-शक्ल में चाहे परिवर्तन कमोबेश मामूली हो मगर एक खास चीज सूरज भाई के चेहरे से पूरी तरह से लापता थी। वह खास चीज थी सूरज भाई के साधारण-से चेहरे पर अजनबी-सी लगती आँखों की एक अलग तरह की चमक। ऐसी चमक जो दुनिया को अपने पैरों की धूल-बराबर समझने से उत्पन्न होती थी। ऐसी चमक जो दुनिया को बदल देने का हौसला और भरोसा होने के कारण उत्पन्न होती थी।

उस चमक की याद आते ही जैसे उसकी तरुणाई के दिन उसकी आँखों के आगे नाचने लगे थे। कॉलेज के वे सुनहरे दिन, जब हजारों-हजार सपने दिन-रात उसके मन-मस्तिष्क में छाए रहते थे। बेफिक्री के वे दिन। वाद-विवाद और भाषण स्पर्धाओं के वे दिन। नुक्कड़ नाटकों के वे दिन। राष्ट्रीय सेवा योजना के शिविरों के वे दिन। अनेक सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ाव के वे दिन। अंतहीन ऊर्जा और रचनात्मकता के वे दिन।

सूरज भाई से उसकी पहली मुलाकात कॉलेज में हुई थी। पहला ही साल था उसका कॉलेज में। अपने कुछ मित्रों के बीच बैठा किसी मुद्दे पर बड़े जोश में भाषण झाड़ रहा था वह, जब अचानक सूरज भाई उसके सामने आकर खड़े हो गए थे। बिना किसी भूमिका के तड़ से पूछा था उन्होंने, 'नाटक में काम करोगे?'

अचानक हुए इस प्रश्न से इस कदर हक्का-बक्का हुआ था वह कि कोई जवाब देने की जगह मूर्खों की तरह ताकता रह गया था सूरज भाई के चेहरे की ओर।

'भाषणबाजी तो अच्छी कर लेते हो। चेहरे के हाव-भाव से लगता है कि नाटक में काम करने में भी कोई मुश्किल नहीं होगी।' मुस्कराते हुए कहा था सूरज भाई ने। फिर कुछ व्यस्त होकर बोले थे, 'अच्छा, कल सुबह आठ बजे आ जाना। ऊपर छत पर रिहर्सल होती है हमारी।' उसकी स्वीकृति की कोई प्रतीक्षा नहीं की थी उन्होंने। जैसे पता था उन्हें, वह ना नहीं करेगा।

ना करने का तो सवाल ही नहीं था। कॉलेज के अपने पहले कुछ दिनों में ही सूरज भाई की मंडली की खासी चर्चा सुन चुका था वह। कॉलेज की सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों का केंद्रबिंदु थी वह मंडली। हर कोई उस मंडली का हिस्सा बनना चाहता था। मगर सूरज भाई बहुत देख-परख कर ही किसी को अपनी मंडली में शामिल किया करते थे। उसे इस बात की भी जानकारी थी कि प्रथम वर्ष का कोई छात्र उस मंडली का सदस्य नहीं था। सो सूरज भाई के आमंत्रण को उसने अपनी खुशनसीबी माना था उस समय। और वह जानता था कि एक बार सूरज भाई की मंडली में प्रवेश मिल जाने का अर्थ होगा, प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के बीच वह हीरो हो जाएगा। इस ख्याल ने ही उसे एक अजीब-से सुकून के एहसास से भर दिया था।

इसके बाद वह सूरज भाई की मंडली का एक अभिन्न हिस्सा हो गया था। कॉलेज के लगभग सभी आयोजनों से उनकी मंडली का जुड़ाव रहता था और इस तरह उसका भी जुड़ाव किसी न किसी रूप में उन आयोजनों से रहने लगा था। खासकर नाटक दल का तो वह लाड़ला था। उसके अभिनय और उत्साह से सूरज भाई बहुत खुश थे। यही वजह थी कि नाटक चाहे कॉलेज में हो, बाहर किसी सभागार के मंच पर या फिर नुक्कड़ों पर। हर नाटक में उसका कोई न कोई रोल अनिवार्य रूप से होता था।

सूरज भाई के साथ नाटक में काम करने का अपना अलग ही मजा था। कोई भी नाटक शुरू करने से पहले सूरज भाई सबको बैठाकर उस नाटक की मुख्य थीम के बारे में बता देते। उसके बाद नाटक के पात्रों और संवादों पर घंटों चर्चाएँ होतीं। सबको अपनी-अपनी राय रखने का अधिकार था। सूरज भाई बड़े धैर्य से सबकी बातें सुनते थे। वह सारी चर्चाओं में सक्रिय रूप से सहभागी होते। दूसरों को चर्चा में शामिल होने के लिए प्रेरित करते, बहस करने के लिए उकसाते। ब्रेन स्ट्रोमिंग का एक लंबा दौर चलता। उसके बाद सूरज भाई शाम को जहाँ जगह मिलती, कागज-कलम लेकर बैठ जाते। फिर जब तक उस नाटक की अंतिम स्क्रिप्ट तैयार न हो जाती, वह उस जगह से उठते नहीं थे।

कोई दूसरा सटीक शब्द उसे कभी मिला नहीं, मगर सच यही था कि भयानक ऊर्जा थी उन दिनों सूरज भाई के भीतर। चंद कप चाय और कुछ सिगरेट - इनके बल पर वे सारा दिन नाटक की धुन में लगे रह सकते थे। चाय और सिगरेट मिल जाए तो फिर जैसे भूख-प्यास का कोई अर्थ ही नहीं था उनके लिए। स्वभाव से पूरे फक्कड़। दिन भर काम में जुटे रहे और रात को जहाँ जगह मिल गई, सो गए। न कोई संकोच, न कोई आग्रह।

उन दिनों सूरज भाई हर समय जैसे क्रांति करने की तैयारी करते रहते थे। उनका विश्वास था कि संसार को सही दिशा दिखलाने का कार्य नियति ने (ईश्वर या भाग्य में उनका विश्वास नहीं था) उन जैसे क्रांति के अग्रदूतों को ही सौंपा है। यह उनका कर्तव्य है कि वे फासिस्ट मानसिकता के पूँजीवादी लोगों को समूल उखाड़कर उनका नाश कर दें और फिर सारे संसार में सर्वहारा वर्ग के शासन की स्थापना करें। इस क्रांति के लिए लेखन और नाटक - इन दोनों को वे मुख्य औजार मानते थे।

सूरज भाई को देखकर ही सबसे पहले उसके मन में यह सवाल उठा था और बाद में कई बार उसने इस बात पर विचार किया, मगर कभी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका कि मार्क्सवाद ने इस देश के युवाओं के भीतर रचनात्मकता के बीज बोए थे या असंभव स्वप्नों के मायाजाल में फँसाकर उनकी रचनात्मकता को निरर्थक ढंग से नष्ट हो जाने की राह दिखाई थी।

अजीब-सी धुन थी सूरज भाई के भीतर। जब किसी नाटक या आंदोलन की तैयारी में जुटे हुए होते तो न सिर्फ खाना-पीना बल्कि नहाना-धोना भी भूल जाते थे वे। कई-कई दिनों तक न अन्न का दाना उनके मुँह में जाता था और न पानी की एक बूँद उनके शरीर को छू पाती थी। रोज-रोज कपड़े बदलने को तो वे वैसे भी बुर्जुआ वर्ग की अय्याशी का नमूना माना करते थे। जाहिर है इस दौरान चेहरे पर दाढ़ी भी दिन दूनी रात चौगुनी की रफ्तार से बढ़ती रहती थी। फिर जब एक-आध सप्ताह बाद कुछ फुर्सत मिलती तो वे होस्टल के अपने कमरे में जाकर नहाते-धोते, कपड़े बदलते, नाई से दाढ़ी बनवाते, पेट भर खाना खाते और फिर किसी दूसरी योजना में मगन हो जाते।

सूरज भाई के घर-परिवार के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं थी। अपने घर-परिवार के बारे में वे कोई बात करना पसंद नहीं करते थे। यदि कोई गलती से कुछ पूछ लेता तो कहते कि इस देश का हर गरीब और मजदूर, शोषण का शिकार हर व्यक्ति मेरे परिवार का हिस्सा है। लोगों का अनुमान था कि वे अपने परिवार से किसी तरह का कोई वास्ता नहीं रखते थे। उन दिनों आंदोलनों और क्रांति की योजनाओं से कभी उनको फुर्सत मिल जाती तो गाहे-बगाहे कॉलेज में अपनी कक्षा में आकर बैठ जाते थे। जितनी देर बैठते, प्राध्यापकों से लंबी-लंबी बहस करके उनकी जान साँसत में डाले रहते।

सूरज भाई की आय का कोई नियमित स्रोत नहीं था। अखबारों और पत्रिकाओं में लेख आदि लिखने से कुछ पैसा मिल जाया करता था। कभी-कभी कुछ प्रकाशकों के

लिए वे कुंजी, गाइड और गेस पेपर जैसी सामग्री लिख दिया करते थे। इन पैसों से ही उनकी फीस और होस्टल का खर्च निकलता था। बाकी जीवन-निर्वाह के लिए वह यार-दोस्तों पर निर्भर थे। और इसे वह समाज का दायित्व समझते थे कि उनके जैसे क्रांति के लिए समर्पित अग्रदूत की रोजमर्रा की जरूरतों का निर्वाह समाज बड़ी प्रसन्नता से करे और उनका एहसान माने कि उसे ऐसा सौभाग्य दिया जा रहा है।

पैसों के मामले में सूरज भाई पूरी तरह से समदर्शी थे। जब जरूरत होती, जो भी सबसे पहले सामने दिखाई दे जाता, उसी से कुछ पैसे उधार माँग लेते। उन्हें इस बात से भी कभी कोई मतलब नहीं होता कि उसी व्यक्ति से वे पिछली बार भी उधार ले चुके हैं। ऐसे समय हर बार एक ही बात कहते, 'यार, प्रकाशक से कुछ रुपया आने वाला है, जल्दी ही लौटा दूँगा।' मगर देनेवाला भी इस बात को भली-भाँति जानता कि न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी। उसका और सूरज भाई का कोई तीन-चार साल साथ रहा और इस पूरी अवधि में उसने कभी यह नहीं देखा कि उन्होंने कभी किसी से उधार लिया हुआ पैसा लौटाया हो।

शुरू के कुछ समय तो यार-दोस्तों की उदारता और फिर कुछ सूरज भाई के लिहाज के चलते गाड़ी चलती रही। उसके बाद धीरे-धीरे यार-दोस्तों ने सूरज भाई से कन्नी काटनी शुरू कर दी। आखिर हर कोई यही सोचता था कि सर्वहारा वर्ग के लिए होने वाली क्रांति का खर्च उठाने की जिम्मेदारी उसके सिर पर ही क्यों हो? सो मित्र मंडली सूरज भाई को पैसे न देने के नित नए बहानों की खोज में रहने लगी थी।

जहाँ तक सूरज भाई का सवाल था, वे किसी और ही मिट्टी के बने हुए थे। वे भी समझते थे कि सामने वाला पैसे न देने के लिए ही हजार तरह के बहाने बना रहा है, मगर उसी व्यक्ति से कुछ न कुछ वसूल लेने की उनकी इच्छा भी प्रतिरोध पाकर जिद में बदल जाया करती थी। जितने बहाने सामने वाला पैसे न देने के लिए गढ़ता, उससे कहीं तेजी से वे किसी न किसी तरह कुछ न कुछ उससे झटक लेने के तरीके सोच लेते थे और उन्हें एक के बाद एक आजमा लेते थे। यदि सचमुच उस समय किसी के पास कुछ भी न हो, या फिर सामने वाला सूरज भाई से भी बड़ा जिद्दी और बेशर्म न हो तो फिर वह कुछ न कुछ सूरज भाई को देकर अपना पीछा छुड़ा लेने में ही गनीमत समझ लेता। यद्यपि वह एक निम्नमध्यमवर्गीय परिवार से ताल्लुक रखता था और तब पढ़ ही रहा था मगर एक-दो बार उसने भी सर्वहारा वर्ग के लिए क्रांति करने में जुटे सूरज भाई के महान यज्ञ में कुछ आहुतियाँ दी थीं।

शुरू-शुरू में उसके भीतर भी क्रांति करने का जज्बा जाग उठा था, मगर सच यही था कि सूरज भाई की दशा-दिशा देखकर उसने इस तरह के किसी भी ख्वाब से जल्दी ही किनारा कर लिया। डिग्री करने तक पत्रकारिता का भूत उसके सिर पर चढ़ गया था। अपने शहर के एक छोटे से समाचार-पत्र से शुरुआत करने के बाद जल्दी ही उसे प्रदेश की राजधानी से प्रकाशित होने वाले एक अखबार से प्रस्ताव मिला और उसने वहाँ पहुँचने में देरी नहीं की।

इसके बाद अगले एक दशक तक वह अनेक शहरों और अखबारों की परिक्रमा करता हुआ दो साल पहले देश की राजधानी में आ पहुँचा था, एक बड़े समाचार-पत्र के दिल्ली ब्यूरो का प्रमुख बनकर। अपने शहर से उसका नाता इस दौरान न के बराबर रहा। एक-आध बार वहाँ जाने पर उसने सूरज भाई के बारे में जानकारी हासिल करने का प्रयास किया। पता चला कि उन्होंने भी समाज में क्रांति के लिए अनुकूल वातावरण बनता न देखकर आखिर पत्रकारिता की ही राह पकड़ ली थी। इस उम्मीद में कि उनकी लेखनी लोगों के भीतर क्रांति का जज्बा जगाने में कामयाब होगी। जिस अखबार से उसने अपनी पत्रकारिता शुरू की थी, वहीं से सूरज भाई ने भी शुरुआत की। मगर इससे ज्यादा जानकारी उसे हासिल नहीं हुई और सच तो यह है कि इससे ज्यादा जानने का उसने प्रयास भी नहीं किया। दैनिक जरूरतों ने क्रांति के सपनों को कब थपकियाँ दे-देकर गहरी नींद सुला दिया, उसे पता भी नहीं चला। और जब क्रांति का सपना ही गहरी नींद सो गया तो उस क्रांति के साथियों से वास्ता रखना उतना जरूरी नहीं रहा, जितना जरूरी संपादक को हर सुबह की मीटिंग में संतुष्ट करना हो गया था।

और बारह साल बाद उस अजीब शाम को सूरज भाई उससे फिर टकरा गए। उसने तपाक से हाथ मिलाया था सूरज भाई से। एक गहरे संतोष की लहर-सी दौड़ती हुई देखी उसने उनके चेहरे पर। कुछ झिझकते हुए बोले सूरज भाई, 'मैं सोच रहा था, पता नहीं तुम मुझे पहचान पाओगे या नहीं।'

'यह कैसे हो सकता है सूरज भाई। इतना समय गुजारा है आपके साथ, भला आपको कैसे भूल सकता हूँ मैं?' उसके स्वर में आदर का भाव था।

'समय का भरोसा नहीं है भाई। आँखों की पहचान बदलते देर नहीं लगती। फिर समय भी तो कितना हो गया है हम लोगों को मिले हुए।'

समय तो हो गया था। बारह-तेरह साल का अरसा कोई कम तो नहीं होता है। वह खुद कितना बदल गया था इस दौरान। सिर के बालों से कुछ-कुछ सफेदी झाँकने लगी थी। वजन पहले से बहुत बढ़ गया था। चेहरा भर गया था और पेट छूटने लगा था। एक पत्रकार से ज्यादा दुकानदार दिखाई देने लगा था वह। केवल एक ही चीज अब तक नहीं बदली थी, कॉलेज के जमाने से ही उसके चेहरे पर चिपकी हुई दाढ़ी।

पहले सूरज भाई ने उसके बारे में पूछा। अपनी छोटी-सी रामकहानी सुनाकर जब उसने सूरज भाई के बारे में जिज्ञासा की तो उन्होंने मध्यप्रदेश के ही दो अन्य नामी-गिरामी अखबारों में काम करने की जानकारी देते हुए बताया कि इस समय वह राजस्थान के उदयपुर शहर में एक प्रख्यात अखबार के स्थानीय संपादक हैं। उस समय पहली बार उसने कुछ ध्यान से सूरज भाई की ओर देखा था। हालाँकि सूरज भाई की प्रतिभा और क्षमता पर उसे किसी तरह का संदेह नहीं था, मगर वह भी पत्रकारिता की दुनिया में ही दस-बारह साल गुजार चुका था। उस समय सूरज भाई का जो हुलिया बना हुआ था, उस हुलिए का कोई व्यक्ति किसी प्रतिष्ठित अखबार का स्थानीय संपादक नहीं हो सकता, इतना तो पत्रकारिता का कोई नौसिखिया भी बता सकता था।

'यहाँ कैसे आना हुआ**?'** आईएनएस के बाहर कोने की गुमटी वाले से दो कप चाय लेते हुए उसने पूछा था।

'दरअसल हमारा दिल्ली एडिशन लांच होने वाला है। उसी सिलसिले में मैं यहाँ आया था।**'**

'अच्छा, यह तो बड़ी अच्छी बात है। मगर आश्चर्य है कि मैंने इस बात की अब तक कोई चर्चा नहीं सुनी।' उसने कुछ संदेह के साथ कहा।

उसके संदेह ने सूरज भाई के चेहरे की खुशी को थोड़ा हल्का कर दिया था। एक पल को मानो उन्होंने सोचा कि इस बात का क्या जवाब दें, फिर थूक गटकते हुए बोले, 'दरअसल तुम तो जानते हो पत्रकारिता में आजकल कितनी गलाकाट स्पर्धा है। हमारे मालिक अपने राष्ट्रीय संस्करण को एक सरप्राइज की तरह शुरू करना चाहते हैं। इसलिए बाहर इस बारे में कोई सुगबुगाहट नहीं है।'

'अच्छा**-**अच्छा। कहाँ तक पहुँच गई है तैयारी**?'** उसने भी अपने संदेह को लंबा न खींचने में ही गनीमत समझी।

'तैयारी तो लगभग हो ही चुकी है। हम लोगों ने डमी एडिशन निकालना शुरू भी कर दिया। अगले महीने किसी भी हालात में हम यहाँ नया एडिशन लाँच कर देंगे।' सूरज भाई का आत्मविश्वास फिर लौटने लगा था।

इसके बाद बड़ी देर तक सूरज भाई अखबारों में चलने वाली राजनीति और अखबार मालिकों द्वारा पत्रकारों के शोषण की चर्चा करते रहे। उन्होंने बताया कि उनके अखबार के मालिक ने भी उनके ऊपर एक जूनियर को बैठा दिया है और वे उसके मातहत काम करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें दिल्ली संस्करण का प्रमुख बना दिया जाए। इसी सिलसिले में अखबार मालिक से चर्चा चल रही है। फिर वे पत्रकारिता की दुनिया में व्याप्त भविष्य की अनिश्चितता की चर्चा करने लगे। इस बीच उन्होंने उसके घर का पता और फोन नंबर भी ले लिया। उसने भी सहज भाव से उन्हें घर आने का निमंत्रण दे दिया। सूरज भाई की डायरी में अपने घर का पता और फोन नंबर लिखते समय न जाने क्या सोचकर उसने अपना मोबाइल नंबर नहीं लिखा।

अँधेरा गहराने लगा था। मौसम का मिजाज भी कुछ ठीक नहीं दिख रहा था। उसने सूरज भाई से चलने की इजाजत माँगी।

'कैसे जाओगे घर**?**' सूरज भाई ने कुछ आत्मीयता से पूछा।

'यहीं सामने से ही बस मिलेगी। सीधे घर के पास तक जाती है।' चलते हुए उसने कहा।

सूरज भाई के चेहरे पर अचानक कुछ असहजता के भाव दिखाई देने लगे। कुछ सकुचाते हुए उन्होंने कहा, 'यार सुरेंद्र! एक छोटा-सा काम था।'

'हाँ-हाँ कहिए सूरज भाई।' कहा तो उसने, मगर उसके स्वर में किसी तरह की जिज्ञासा या उत्साह नहीं था। जैसे अचानक उसके मस्तिष्क में कोई बल्ब जला था। उसे लगा, इसके बाद जो कहेंगे सूरज भाई, उसके लिए वह नया नहीं है।

'यार, तुम तो जानते हो, होटल में ठहरा हूँ मैं। दरअसल मेरा सारा पैसा खर्च हो गया है। घर से पैसा मँगवाया था, आज-कल में ही मेरा ड्राफ्ट आने वाला है। बस एक-दो दिन की परेशानी है। तब तक यदि तुम कुछ मदद कर सको तो...।' सूरज भाई ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

उस समय अचानक मानो करवट बदलकर बारह साल पहले की उम्र में लौट गया था। बिना किसी पूर्व विचार के अचानक बारह साल पहले का सुरेंद्र जाग गया था, जो सूरज भाई की इस तरह की किसी माँग पर कोई बहाना खोजने लगता था। बड़ी सहजता से उसने सच के लगभग करीब वाला जवाब दिया, 'माफ कीजिए सूरज भाई, दिल्ली का हाल तो आप जानते ही हैं। उस पर बसों में कैसा गुंडाराज चलता है, कहने की जरूरत नहीं। मैं कभी जेब में ज्यादा पैसे लेकर नहीं निकलता। बस आना-जाना हो जाए, इतने ही पैसे रहते हैं साथ में। अभी तुरंत कुछ इंतजाम हो पाना मुश्किल है।'

सूरज भाई के चेहरे का रंग कुछ और धूमिल हो गया, मगर तत्काल वे बोले, 'कोई बात नहीं, कल मैं घर आता हूँ।'

न चाहते हुए भी तत्काल उसके चेहरे के रंग बदल गए। अभिनय के अपने पुराने अभ्यास से उसने तुरंत उन भावों को चेहरे पर से पोंछा। मगर भीतर ही भीतर एक नई मुसीबत खड़ी हो जाने के एहसास से वह बच नहीं सका। उसे लगा, तात्कालिक राहत चाहे पा गया हो वह, मगर इस समस्या से छुटकारा शायद संभव नहीं है। अपने चेहरे पर जबरन मुस्कराहट लाते हुए उसने कहा, 'ठीक है सूरज भाई, बस आने से पहले एक फोन जरूर कर लीजिएगा। आप तो जानते हैं, दिल्ली में एक जगह से दूसरी जगह की दूरी कितनी ज्यादा होती है। यदि किसी वजह से मैं घर पर नहीं रहा तो बेकार में आपका चक्कर हो जाएगा।'

न जाने क्यों उसे लगा कि उसका मंतव्य सूरज भाई ने समझ लिया है। सूरज भाई के साथ हाथ मिलाकर विदा ली उसने। सड़क पार करके वह बस स्टॉप पर आ खड़ा हुआ। सड़क की दूसरी ओर सूरज भाई जाते हुए दिखाई दे रहे थे। सूरज भाई से जुड़ी हुई एक-एक बात उसे याद आने लगी। वह अचानक दुखी हो गया। उसे अपने व्यवहार पर शर्म आई। सूरज भाई की प्रतिभा का वह सदा ही कायल रहा। जीवन के किसी मोड़ पर सूरज भाई से बहुत कुछ सीखने को मिला था उसे। और जो सीखने को मिला था, उसकी एवज में चंद रुपए कोई बड़ी कीमत नहीं थी। पैसों के पीछे भागते धन-पशुओं की भीड़ का हिस्सा कभी मत बनना, अक्सर यही कहा करते थे सूरज भाई। मगर आज वह उस भीड़ का ही एक अभिन्न हिस्सा होकर रह गया है।

मगर सूरज भाई भी तो वहाँ नहीं पहुँचे, जहाँ के लिए चले थे। धन-पशु वे बेशक नहीं हुए थे, मगर धन की जरूरत ने उन्हें किसी पशु से भी ज्यादा दयनीय बना दिया था। वह समझ नहीं पा रहा था कि इतने प्रतिभाशाली व्यक्ति के इस तरह के पतन का जिम्मेदार कौन है। हमारा समाज, हमारी सोच, हमारी व्यवस्था या फिर खुद वही

व्यक्ति? उसे दुख इस बात का भी हो रहा था कि जेब में सौ-पचास रुपए होते हुए भी वह सूरज भाई से झूठ बोल उठा। यदि उस समय जेब में रखे हुए सौ-पचास रुपए वह सूरज भाई को दे देता तो उसका कुछ बिगड़ नहीं जाता। मगर फिर यह ख्याल भी उसके भीतर उभरा कि ऐसा करना दरअसल एक अनचाही परिस्थिति की शुरुआत होती, अंत नहीं।

लेकिन फिलहाल तो सिलसिला शुरू होने वाला है, उसका अंत कहाँ जाकर होगा, यही ख्याल उसकी जान साँसत में डाले हुए था। बस में बैठे हुए उसने अगले दिन के बारे में सोचा। उसे अच्छी तरह से पता था कि सूरज भाई फोन नहीं करेंगे, सुबह सीधे उसके घर आ धमकेंगे। उनका तुरंत सामना ना करना पड़े इसका सिर्फ एक ही उपाय हो सकता है कि वह कल सुबह घर पर ही ना रहे। फिर वह इस सोच में डूब गया कि ऐसी कौन-कौन-सी जगह है जहाँ वह इतनी सुबह जा सकता है।